□□□□ □□□

जनसत्ता 27 जून, 2013: महत्त्वपूर्ण शासकीय जिम्मेदारी उठा□ हु□ □क वरिष्ठ केंद्रीय नेता का ताजातरीन बयान गंभीरता से विचार करने योग्य है□ उसमें तीन बातें ध्यान आकर्षित करती हैं□ पहली, 'अल्पसंख्यकों के लि□ सा□ चार प्रतिशत आरक्षण का उप-कोटा बनाया गया, लेकिन उसे सुप्रीम कोर्ट ने स्थगित कर दिया□ इसलि□ अकादमिक संस्थानों में अल्पसंख्यकों के लि□ नौकरी और पद सुरक्षित करने की कोई नीति नहीं है□' दूसरी, 'हम आशान्वित हैं कि उप-कोटा लागू हो जा□गा□ हम अटॉर्नी जनरल से बात कर रहे हैं ताकि सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई और पहले करा ली जा□ और मामला सुलझा लिया जा□□ लेकिन इस बीच हमें अल्पसंख्यकों की मदद करनी होगी□' उस मदद का विवरण देते हु□ उन्होंने कहा, 'चौवालीस पॉलिटेक्निक और □क सौ तेरह आइटीआइ अल्पसंख्यक केंद्रित इलाकों में खोले जा रहे हैं□' इतना ही नहीं, उन वरिष्ठ केंद्रीय नेता के अनुसार कार्मिक विभाग को निर्देश दिया गया है कि वह सरकारी क्षेत्र के सभी सेलेक्शन बोर्डों और चयन समितियों में अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व दे□

उनके आत्मविश्वास और कामकाजी अंदाज से स्पष्ट है कि अल्पसंख्यक आरक्षण लागू होना तय है□ केवल समय की बात है□ वह भी जल्दी करने का इंतजाम हो रहा है□ फिर भी जितनी देर हो, उस बीच अंतरिम लाभ के तौर पर □क सौ सत्तावन तकनीकी संस्थान 'अल्पसंख्यकों' के हित में खोले जा रहे हैं□ इतना ही नहीं, आमतौर पर सभी अकादमिक चयन समितियों में अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों को स्थान देने का सीधा अर्थ है कि अब सरकारी अकादमिक आदि पदों पर चयन का आधार यह भी होगा कि उम्मीदवार अल्पसंख्यक हो! नहीं तो, चयन समिति में ही 'अल्पसंख्यक' को लाने की चिंता का कोई अर्थ नहीं□

ये सब दूरगामी निर्णय किस सिद्धांत के आधार पर हो रहे हैं? क्या यह सब उचित है, न्यायपूर्ण है, देश-समाज के हित में है? इतना ही नहीं, क्या यह संविधान के भी अनुरूप है? ये प्रश्न बहुतों को अटपटे भी लग सकते हैं□ क्योंकि 'अल्पसंख्यकों' के लि□ यह और वह करने के अभियान इतने नियमित हो ग□ हैं कि उसे सहज और सामान्य तक समझा जाने लगा है□ पर सचाई यह है कि न केवल यह अभियान देश के लि□ अत्यंत खतरनाक और विघटनकारी है, बल्कि संविधान के भी अनुरूप नहीं है□ चूंकि राजनीतिक दलों और प्रभावी बुद्धिजीवी वर्ग ने संकीर्ण लोभ और वैचारिक झिक में इसे सही मान लिया है, इससे इसका अन्याय, असंवैधानिकता और संभावित भयावह दुष्परिणाम छिपाया नहीं जा सकता□

अन्याय और असंवैधानिकता की पहचान इसी से आरंभ हो सकती है कि 'अल्पसंख्यक' का अर्थ बदल कर □क विशेष समुदाय मात्र कर लिया गया है□ यह विचित्र सचाई सभी जानते हैं□ लेकिन क्या भारतीय संविधान में अल्पसंख्यक का यही अर्थ है? दूसरी बात, जो उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि हर कहीं अल्पसंख्यक को लाने और भरने के निर्णयों में समानता के उस संवैधानिक प्रावधान को घूरे में फेंक दिया गया है कि राज्य किसी आधार पर नागरिकों में भेदभाव नहीं करेगा□ अल्पसंख्यक संबंधी सभी घोषणा□ और निर्णय खुले भेदभाव के आधार पर हो रहे हैं□ फलां व्यक्ति अल्पसंख्यक समुदाय का है, इसलि□ किसी महत्त्वपूर्ण चयन समिति में लिया जा□गा- यह संविधान की किस धारा के अनुरूप है?

अल्पसंख्यक संबंधी संविधान की धाराओं में दूर-दूर तक इस तरह का कोई अर्थ नहीं निकलता□ कृपया संविधान की वे धारा□, 29 और 30, स्वयं प□ कर देखें□ इसलि□ अल्पसंख्यकों के लि□ निरंतर ब□ते, उग्रतर होते कार्यक्रम में जो कुछ किया जा रहा है उनमें अधिकतर पूरी तरह अवैधानिक हैं□ यह ऐसी डाकेजनी है, जो इतने खुले रूप में हो रही है कि डाकेजनी नहीं लगती! शरलक होम्स के मुहावरे में कहें तो 'इट इज सो ओवर्ट, इट इज कोवर्ट'□

हां, यह भी सच है कि अल्पसंख्यक के नाम पर इतनी मनमानियां इसलि□ भी चल रही हैं क्योंकि संविधान ने इनकी पहचान करने में ग□ब□ झाला कर दिया है□ मूल ग□ब□ा उसी से शुरू हुई, मगर उसने अब जो रूप ले लिया है वह संविधान से भी अनुमोदित नहीं है□

बहरहाल, उन संवैधानिक धाराओं में ग□ब□ा यह है कि धारा 29 अल्पसंख्यक के संदर्भ में मजहब, नस्ल, जाति और भाषा, ये चार आधार देती है□ जबकि धारा 30 में केवल मजहब और भाषा का उल्लेख है□ तब अल्पसंख्यक की पहचान किन आधारों पर गिनी या छो□ी जा□गी? यह अनुत्तरित है□ संविधान में दूसरी ब□ी ग□ब□ी यह है कि अल्पसंख्यक की पूरी चर्चा में कहीं 'बहुसंख्यक' का उल्लेख नहीं है□ कानूनी दृष्टि से यह निपट अंधकार भरी जगह है, जहां सारी लूटपाट हो रही है□ क्योंकि कानून में कोई चीज स्वत: स्पष्ट नहीं होती□

जब लिखित कानूनी धाराओं पर अर्थ के भारी मतभेद होते हैं, जो न्यायिक बहसों, निर्णयों में दिखते हैं; तब किसी लुप्त, अलिखित धारणा पर अनुमान किया जा सकता है□ इसीलि□ 'बहुसंख्यक' के रूप में हमारे बुद्धिजीवी जो भी मानते हैं, वह संविधान में कहीं नहीं□ इसी से भयंकर ग□ब□ियां चल रही हैं□ संविधान में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों अपरिभाषित हैं, लेकिन व्यवहार में स्वार्थी नेतागण दोनों को जब जैसे मनमाना नाम और अर्थ देकर किसी को कुछ विशेष दे और किसी से कुछ छीने ले रहे हैं□

यह सब इसलि□ भी हो रहा है, क्योंकि अल्पसंख्यक संदर्भ में बुनियादी प्रश्न पूरी तरह, और आरंभ से ही अनुत्तरित हैं□ जैसे, बहुसंख्यक कौन है? अगर मजहब, नस्ल, जाति और भाषा (धारा 29); या केवल मजहब और भाषा (धारा 30) के आधार पर भी अल्पसंख्यक की अवधारणा की जा□, तो इसकी तुलना में बहुसंख्यक किसे कहा जा□गा? फिर, यह बहुसंख्यक और तदनुरूप अल्पसंख्यक भी जिला, प्रांत या देश, किस क्षेत्राधार पर चिह्नित होगा? इन बिंदुओं को प्राय: छुआ भी नहीं जाता□ ऐसी भंगिमा बनाई जाती है मानो यह सब सबको स्पष्ट हो□ जबकि ऐसा कुछ नहीं है□

न संविधान, न किसी सरकारी दस्तावेज, न सुप्रीम कोर्ट के किसी निर्णय- कोई 'बहुसंख्यक' नामक चि□िया कहीं दिखाई नहीं देती□ न इसका कोई नाम है, न पहचान□ दूसरे शब्दों में, बिना किसी बहुसंख्यक के ही अल्पसंख्यक का सारा खेल चल रहा है! कुछ ऐसा ही जैसे ताश के खेल में □क ही खिला□ी दोनों ओर से खेल रहा हो□ या किसी सिक्के में □क ही पहलू हो□ दूसरा पहलू सपाट, खाली हो□ उसी तरह भारतीय संविधान में अल्पसंख्यक तो है, बहुसंख्यक है ही नहीं!

लेकिन जब बहुसंख्यक कहीं परिभाषित नहीं, तो अल्पसंख्यक की धारणा ही असंभव है! क्योंकि 'अल्प' और 'बहु' तुलनात्मक अवधारणाएं हैं। एक के बिना दूसरा नहीं हो सकता। मगर भारतीय संविधान में यही हो गया है। तब वही परिणाम होगा, जो हो रहा है- यानी निपट मनमानी और अन्याय। उदाहरण के लिए, संविधान की धारा 29 में 'जाति' वाले आधार पर ब्राह्मण भी अल्पसंख्यक हैं। बल्कि हरेक जाति, पूरे देश, हरेक राज्य और अधिकतर जिलों में अल्पसंख्यक हैं। धारा 30 में 'भाषा' वाले आधार पर हर भाषा-भाषी एक या अधिक राज्य छोड़ कर पूरे देश में अल्पसंख्यक हैं। तीन चौथाई राज्यों में हिंदी-भाषी भी अल्पसंख्यक हैं। इन अल्पसंख्यकों के लिए कब, क्या किया गया? अगर नहीं किया गया, तो क्यों?

इसका उत्तर है कि जान-बूझ कर अल्पसंख्यक को अस्पष्ट, अपरिभाषित रखा जा रहा है, ताकि मनचाहे निर्णय लिए जा सकें। जबकि बहुसंख्यक का तो कहीं उल्लेख ही नहीं! इसलिए न उसके कोई अधिकार हैं, न उसके साथ कोई अन्याय। क्योंकि संविधान या कानून में उसका अस्तित्व ही नहीं!

इस प्रकार, देश की राजनीति और विधान में बहुसंख्यक के बिना ही अल्पसंख्यक अधिकार चल रहा है। अल्पसंख्यकों में भी केवल मजहबी अल्पसंख्यक, उनमें भी केवल कुछ चुने हुए अल्पसंख्यकों को नित नई सुविधाएं और विशेषाधिकार दिए जा रहे हैं। वह अल्पसंख्यक, जो वास्तव में सबसे ताकतवर है!

जिससे देश के प्रशासनिक अधिकारी ही नहीं, मीडिया और न्यायकर्मी भी सावधान रहते हैं। यह कटु सत्य सब जानते हैं। पर तब भी वास्तविक दबे-कुचले, उपेक्षित, निर्बल वर्गों की खोज-खबर नहीं ली जाती। संविधान में वर्णित 'अल्पसंख्यक' प्रावधान अपने अंतर्विरोध और अस्पष्टता के चलते घटिया और देश-विभाजक राजनीति का हथकंडा बन कर रह गया है।

यह हथकंडा ही है, यह इससे प्रमाणित होगा कि मनमाने अर्थ वाले 'अल्पसंख्यक' को गलत बताने, या उसकी अधिकारी सुविधाओं को खारिज करने वाले सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों को सरसरी तौर पर उपेक्षित कर दिया जाता है। अर्थात वोट बैंक के लालच में नेतागण जो करना तय कर चुके हैं, उसके अनुरूप ही वे न्यायालय की बात मानते हैं, नहीं तो साफ ठुकराते हैं।

मसलन, सुप्रीम कोर्ट ने 'बाल पाटील और अन्य बनाम भारत सरकार' (2005) मामले में निर्णय लिखा था, 'हिंदू शब्द से भारत में रहने वाले विभिन्न प्रकार के समुदायों का बोध होता है। अगर आप हिंदू कहलाने वाला कोई व्यक्ति ढूंढ़ना चाहें तो वह नहीं मिलेगा। वह केवल किसी जाति के आधार पर पहचाना जा सकता है। ...जातियों पर आधारित होने के कारण हिंदू समाज स्वयं अनेक अल्पसंख्यक समूहों में विभक्त है। प्रत्येक जाति दूसरे से अलग होने का दावा करती है। जाति-विभक्त भारतीय समाज में लोगों का कोई हिस्सा या समूह बहुसंख्यक होने का दावा नहीं कर सकता। हिंदुओं में सभी अल्पसंख्यक हैं।' क्या अल्पसंख्यक की किसी चर्चा में इस निर्णय और सम्मति का कोई संज्ञान लिया जाता है? अगर नहीं, तो क्यों?

इस संदर्भ में दिनोंदिन बिगड़ती जा रही स्थिति से क्या अनिष्ट संभावित है, यह भी सुप्रीम कोर्ट के उसी निर्णय में है। न्यायाधीशों ने 1947 में देश-विभाजन का उल्लेख करते हुए वहीं पर लिखा है कि अंग्रेजों द्वारा धार्मिक आधार पर किसी को अल्पसंख्यक मानने और अलग निर्वाचक-मंडल बनाने आदि कदमों से ही अंतत: देश के टुकड़े हुए।

इसीलिए न्यायाधीशों ने चेतावनी भी दी, 'अगर मात्र भिन्न धार्मिक विश्वास या कम संख्या या कम मजबूती, धन-शक्ति-शक्ति या सामाजिक अधिकारों के आधार पर भारतीय समाज के किसी समूह के 'अल्पसंख्यक' होने का दावा स्वीकार किया जाता है, तो भारत जैसे बहु-धार्मिक, बहु-भाषाई समाज में इसका कोई अंत नहीं रहेगा।' न्यायाधीशों ने 'धार्मिक आधार पर अल्पसंख्यक होने की भावना को प्रोत्साहित करने' के प्रति विशेष चिंता जताई, जो देश में विभाजनकारी प्रवृत्ति बढ़ा सकती है। क्या हमारे अधिकतर नेता और बुद्धिजीवी पूरे उत्साह से वही नहीं कर रहे हैं?